



THE
MENTORING
PROJECT

जो आपको ठेस पहुँचाते हैं,
उनके लिए अनुग्रह:
अपने शत्रुओं से कैसे प्रेम करें



AUTOR: DR. RICHARD PERHAI
EDITOR: DR. LARRY OATS

जो आपको ठेस पहुँचाते हैं, उनके
लिए अनुग्रह: अपने शत्रुओं से कैसे
प्रेम करें



लेखक: डॉ. रिचर्ड परह्राई

सम्पादक: डॉ. लैरी ओट्स

विषय-वस्तु

परिचय	4
संघर्ष के मूल कारण को समझना —	
हम पीड़ा का अनुभव क्यों करते हैं	6
सबको समान स्तर पर लाने वाला सुसमाचार—	
हृदय की आत्मिक जाँच.....	10
क्षमा एक निर्णय के रूप में —	
भावनाओं से आगे बढ़कर छोड़ देना	14
वास्तविक जीवन में प्रेम को व्यवहार में लाना —	
सम्बन्धों के लिए आवश्यक कौशल.....	17
शान्ति स्थापित करने वाले का प्रतिफल —	
मसीह की शान्ति में विश्राम.....	21
निष्कर्ष: बरामदे से अन्तिम संदेश.....	25



परिचय

मुझे अपनी पहली कलीसिया का एक व्यक्ति आज भी स्मरण है। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह प्रतिदिन सुबह केवल मेरा जीवन कठिन बनाने के लिए ही उठता था। वह गलियारों में धीरे-धीरे कानाफूँसी करता था। सभाओं में वह मेरे उद्देश्यों पर प्रश्न उठाता था। जब भी मैं उसे देखता, तो मेरी छाती में तीव्र जलन-सी होने लगती थी। हममें से अधिकाँश लोगों के मन में एक गुप्त सूची होती है। यह उन लोगों की सूची होती है जिनके असफल होने की हम भीतर ही भीतर आशा करते हैं। हम रविवार को कलीसिया की बेंचों पर बैठकर अनुग्रह की बातें करते हैं, पर सप्ताह के शेष दिनों में अपने भीतर कड़वाहट का भारी बोझ उठाए फिरते हैं। कठिन स्वभाव के लोगों से निपटते हुए हम थक जाते हैं। अपने शत्रुओं से प्रेम करना कोई ऐसी ऊँची उपलब्धि नहीं है जो केवल “असाधारण मसीहियों” के लिए हो। यह तो प्रत्येक उस व्यक्ति की मूल बुलाहट है जो यीशु के पीछे चलता है, अतः अपने शत्रुओं से प्रेम करना सीखना अत्यन्त आवश्यक है।

लोग कठोर होते हैं क्योंकि यह संसार पतित हो चुका है। जिसे हम पूर्ण रीति से अनैतिकता कहते हैं। इसका अर्थ है कि पाप ने हमारे अस्तित्व के प्रत्येक भाग को प्रभावित किया है। जब कोई आपको ठेस पहुँचाता है, तो वह इसी पतित दशा का एक लक्षण है। आप इसे किराने की दुकान पर तथा कार्यालय में भी देख सकते हैं। मैंने यह सोचते हुए बहुत अधिक समय बिताया कि मेरी कहानी में केवल मैं ही “अच्छा” व्यक्ति हूँ। मैं अपनी कलीसिया के उस व्यक्ति को दोष देने में लगा हुआ था, और अपने ही घमण्ड को अनदेखा कर रहा था। जब लोग आपके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करते हैं, तब परमेश्वर पर भरोसा रखना कठिन हो जाता है, विशेषकर तब जब मन में यह प्रश्न उठता है कि परमेश्वर दुःख उठाने की अनुमति क्यों देता है। परन्तु उस पीड़ा पर भी परमेश्वर का सम्पूर्ण अधिकार होता है। आपका शत्रु उसे आश्चर्यचकित नहीं करता। वह कई बार कठिन स्वभाव के लोगों का उपयोग हमारे प्राणों से स्वार्थ को खुरचकर दूर करने के लिए करता है। यूसुफ के विषय में सोचिए। उसके भाइयों ने उसे एक गड्डू में फेंक दिया और आपस में यह विचार-विमर्श करने लगे कि उसे मार डालें या दास के रूप में व्यापारियों के हाथ बेच दें। उनका उद्देश्य तो बुराई करना था, परन्तु परमेश्वर ने उसी घटना का उपयोग एक राष्ट्र को बचाने के लिए किया, और उसके द्वारा बहुत बड़े उद्देश्य को भी पूरा किया।

हमें परमेश्वर और अपने बीच की उस विशाल खाई पर दृष्टि डालनी चाहिए। रोमियों 5:10 कहता है कि हम परमेश्वर के बैरी थे। हम विद्रोही थे। हम उसकी दया के योग्य नहीं थे, फिर भी उसने हम पर दया की। पवित्रशास्त्र क्षमा के विषय में जो कुछ कहता है, वह हमारे अपने ऋण की गहराई को प्रकट करता है। क्षमा के विषय में पवित्रशास्त्र में कई उदाहरण मिलते हैं। उनमें से एक उस सेवक की कहानी है, जिसका बहुत बड़ा ऋण क्षमा किया गया था (मत.18:23-35)। परन्तु बाहर

क्षेत्रीय मार्गदर्शिका

निकलते ही उसने उस व्यक्ति का गला पकड़ लिया, जिस पर उसका केवल थोड़ा सा ही ऋण था। कई बार हम भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं। हम अपने लिए तो दया चाहते हैं, परन्तु दूसरों के लिए कठोर न्याय की माँग करते हैं। हम स्वयं को उनसे श्रेष्ठ समझने लगते हैं। परन्तु क्रूस हमें बाइबल में क्षमा के वास्तविक स्वरूप का स्मरण कराता है, और यह भी कि हम सब परमेश्वर के अनुग्रह पर आश्रित हैं।

क्षमा कोई भावना नहीं है, और न ही इसका अर्थ भूल जाना होता है। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि जो पाप किया गया, वह “सही” था। यह हृदय का एक न्यायिक निर्णय है, जिसका आरम्भ प्रायः बीती बातों को छोड़ देने से होता है। जो ऋण वे आपके ऊपर छोड़ गए हैं, उसे आप परमेश्वर के हाथों में सौंप देते हैं। वही एकमात्र निष्पक्ष न्यायी है। आप अपनी चुप्पी के द्वारा उन्हें दण्ड देकर परमेश्वर का स्थान लेने का प्रयास करना छोड़ देते हैं। क्षमा करना कैसे सीखें, यह समझना अत्यन्त आवश्यक है। मुझे अपनी कलीसिया की एक महिला का स्मरण है, जिसने अन्ततः उस व्यक्ति को क्षमा करना सीख लिया, जिसने उसे गहरी ठेस पहुँचाई थी। उसने ऐसा इसलिए नहीं किया कि उसके पिता ने उससे क्षमा माँगी थी। उन्होंने कभी क्षमा नहीं माँगी। परन्तु उसने उस व्यक्ति को भी क्षमा करना सीख लिया, जिसे अपने किए का कोई पछतावा नहीं था, क्योंकि मसीह ने उस महिला के जीवन को बदल दिया था। तब उसे यह समझ में आया कि बन्धन में वही थी। और क्षमा ही उस बन्धन की कुंजी थी।

इस विश्वास का प्रभाव आपके प्रतिदिन के जीवन में दिखाई देना चाहिए। यह केवल रविवार की सुबह के लिए ही नहीं है। इसे उस साधारण सुबह में भी कार्य करना चाहिए, जब आप थके हुए हों और तनाव में हों। इसका आरम्भ अपने शत्रुओं के लिए प्रार्थना करना सीखने से होता है। जब आप परमेश्वर से किसी के प्राण के लिए आशीर्ष माँग रहे होते हैं, तब उसके प्रति क्रोधित बने रहना कठिन हो जाता है। अपने शत्रुओं से प्रेम करना और जिस व्यक्ति को आप पसंद नहीं करते, उससे बाइबल के अनुसार बताए गए प्रेम करना सीखने के लिए अनुग्रह की आवश्यकता होती है। फिर भी आप उचित दूरी बनाए रख सकते हैं। क्षमा और मेल-मिलाप के बीच का अंतर समझना संबंधों में बाइबल के अनुसार उचित सीमाएँ बनाए रखने में सहायता करता है। यदि कोई व्यक्ति आपके लिए हानिकारक है, तो आप उसे क्षमा करके भी उससे दूर रह सकते हैं। यह कड़वाहट नहीं, परन्तु बुद्धिमानी है। जब आप इस बात पर विचार करें कि विषैले स्वभाव के लोगों से व्यवहार करने के विषय में बाइबल क्या कहती है, तो यह भी स्मरण रखें कि अपने शत्रुओं के साथ मसीह के समान दया के साथ कैसे व्यवहार करना है। किसी छोटे कार्य से आरम्भ करें। उस सहकर्मी के लिए एक प्याला चाय खरीद दीजिए, जिसने आपको नौकरी से निकलवाने का प्रयास किया था। ऐसा किसी तर्क-वितर्क में जीतने के लिए नहीं, परन्तु मसीह को प्रकट करने के लिए करें। और अपनी उँगलियों पर भी ध्यान दें—जब ऑनलाइन आप पर आक्रमण किया जाए, तब अपना मुँह बन्द रखें।

मेल कराने वाले के लिए प्रतिफल है। जब आप प्रतिशोध लेना छोड़ देते हैं, तब मसीही क्षमा आपके प्राण में गहरा विश्राम लाती है। हम क्रूस की ओर देखते हैं और क्षमा के विषय में यीशु के इन वचनों को सुनते हैं, “हे पिता, इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।” यही हमारा दायित्व है। नए स्वर्ग में फिर कोई शत्रु नहीं होगा। सभी प्रकार के वैर-विरोध समाप्त हो जाएँगे। अभी लोगों से प्रेम करके हम केवल स्वर्ग के लिए स्वयं को तैयार कर रहे हैं। कठिन समय में परमेश्वर पर भरोसा रखना केवल अपने दृढ़ निश्चय के बल पर नहीं सीखा जा सकता। इसके लिए आवश्यक है कि पवित्र आत्मा आपके हृदय में कार्य करे। उस व्यक्ति का नाम लेकर उसे परमेश्वर के हाथों में सौंप दें। उस बोझ को छोड़ दें।

1

संघर्ष के मूल कारण को समझना — हम पीड़ा का अनुभव क्यों करते हैं

पतित हृदय तथा बिखरा हुआ संसार: संसार बिखरा हुआ क्यों प्रतीत होता है इस पर बाइबल आधारित दृष्टिकोण

एक कारण है कि पीड़ा बार-बार साधारण स्थानों पर भी सामने आ खड़ी होती है। केवल अस्पताल के कमरे या कब्रिस्तान में ही नहीं, परन्तु किराने की दुकान में, रसोई की मेज़ के पास भी आ जाती है। एक ऐसा संदेश जो गलत अर्थ में लिया जाता है और फिर वही स्थिति बनी रहती है। पीड़ा प्रायः अपने आने की कोई घोषणा नहीं करती। अधिकांश समय वह बस आपके दिन के साथ आकर ठहर जाती है और वहाँ से हटने के लिए इनकार कर देती है। यहीं पर अधिकांश लोग भ्रमित हो जाते हैं। वे सोचते हैं कि कुछ असामान्य रूप से गलत हो गया है, मानो यह संघर्ष, यह चुभन, यह पीड़ा कोई अपवाद हो। परन्तु ऐसा नहीं है। यही वह धरातल है जिस पर हम चल रहे हैं। यही वह वातावरण है जिसमें हम साँस लेते हैं।

मैंने लोगों को आश्चर्यजनक गरिमा के साथ जीवन जीते देखा है, जबकि कैसर उनके शरीर को भीतर-ही-भीतर खाता जा रहा था। मैंने दूसरों को केवल भुगतान की पंक्ति में किसी की एक रूखी टिप्पणी से पूरी रीति से बिखरते हुए भी देखा है। संसार वही है। धरातल वही है। परन्तु दबाव अलग-अलग है। पाप को किसी नाटकीय मंच की आवश्यकता नहीं होती है। वह साधारण से प्रकाश के नीचे भी अपना काम भली-भाँति करता है। बाइबल में भी इस वास्तविकता को छिपाया नहीं गया है। रोमियों 3 अपनी भाषा को हल्का नहीं करता। “कोई भी धर्मी नहीं, एक भी नहीं।” न अत्याचारी। न कायर। न वह जो मुस्कराते हुए आपको ठेस पहुँचा देता है। न आप। और न मैं। यह अंश केवल स्पष्ट रूप से बुरे लोगों का ही निदान नहीं करता। यह सब पर समान रूप से प्रकाश डालता है। “उनका गला खुली हुई कब्र है।” यह कोई काव्यात्मक अतिशयोक्ति नहीं है। यह मानो शव-परीक्षण का विवरण है। इसका अर्थ है कि हमारे भीतर की सड़न हमारे शब्दों, हमारी दृष्टि और हमारे चुप रहने के द्वारा बाहर प्रकट होती रहती है। इसका अर्थ है कि हम अनजाने में अपनी बातचीत में मृत्यु को साथ ले आते हैं। और कभी-कभी तो हमें इसका स्मरण तक नहीं होता है।

आप इसे किराने की दुकान में भी देखते हैं, क्योंकि वही लोग थके हुए होते हैं। भूखे होते हैं। जल्दी में होते हैं। उनका धीरज टूटने लगता है, उनके बच्चे शोर कर रहे होते हैं, उनके वैवाहिक सम्बन्ध तनाव में होते हैं, और उनका बैंक खाता लगातार खाली होता जा रहा होता है। ऐसे में पाप को कोई बड़ा अवसर नहीं चाहिए। वह छोटी सी दरार से भी भीतर प्रवेश कर जाता है। लोग कठोर व्यवहार क्यों करते हैं? क्योंकि मनुष्य का हृदय स्वयं की ओर मुड़ा हुआ होता है। जब ऑगस्टीन ने यह कहा था, तब वह कोई नाटकीय बात नहीं कर रहे थे। वह केवल सत्य कह रहे थे। हम प्रातः उठते ही सबसे पहले अपने विषय में सोचते हैं। अपनी आवश्यकताओं के विषय में, अपनी पीड़ाओं के विषय में, अपनी कहानी के विषय में। लेकिन

जब कोई दूसरा व्यक्ति, चाहे थोड़ा सा ही सही हमारे साथ हो जाता है, तब भीतर का पुराना तंत्र फिर से काम करने लगता है। मैंने एक बार एक व्यस्क व्यक्ति को केवल एक छूट-पल के कारण भुगतान जमा करने वाले कम आयु वाले कर्मचारी पर बुरी तरह से क्रोधित होते देखा। उसकी गर्दन की नसें उभर आई थीं। उसकी आवाज़ में कम्पन थी। पूरी दुकान स्तब्ध हो गई थी। बाद में लोग धीरे-धीरे उसके क्रोध, उसके तनाव, और यह कहते हुए चर्चा करने लगे कि “शायद वह किसी कठिन परिस्थिति से गुज़र रहा होगा।” संभव है कि यह सब सत्य रहा हो। परन्तु इससे भी गहरा सत्य कुछ और ही था। पाप को एक अवसर मिल गया था, और उसने उसका लाभ उठा लिया। यह उसके व्यवहार का बहाना नहीं है। यह केवल उसकी सही पहचान है। पवित्रशास्त्र हमें भोला-भाला बनने के लिए नहीं कहता है। वह हमें सचेत और संयमी रहने के लिए कहता है। जब कोई आपको ठेस पहुँचाता है, तो वह ठेस व्यक्तिगत प्रतीत होती है, क्योंकि वह वास्तव में व्यक्तिगत ही होती है। परन्तु वह केवल आप तक सीमित नहीं होती। जो टूटन उस व्यक्ति के भीतर से बाहर प्रकट हुई, उसे आपने उत्पन्न नहीं किया। आप तो केवल उस समय वहाँ उपस्थित थे जब वह बाहर निकल रही थी। यह बात महत्वपूर्ण है। क्योंकि यदि आप उस मिट्टी को नहीं समझेंगे, तो जीवन भर खरपतवार उगने पर आश्रय करते रहेंगे।

पीड़ित होने का भ्रम: पीड़ित मानसिकता से आगे बढ़कर आत्मिक सामर्थ्य की ओर

एक छूट है जो हम प्रायः बिना शब्दों के ही स्वयं से कहते रहते हैं। उसका भाव कुछ ऐसा होता है: जैसे “यहाँ समझदारी से काम लेने वाला तो मैं ही हूँ। मैं ही सही हूँ। यदि वे केवल पाप करना छोड़ दें, तो सब कुछ ठीक हो जाएगा।” यह सोच मन को सान्त्वना तो देती है, परन्तु घातक भी होती है। मैंने यह बात कठिन अनुभव से सीखी है। वर्षों पहले, कलीसिया में एक व्यक्ति के साथ मेरा एक मौन विवाद चल रहा था। यह कोई नाटक नहीं था। वहाँ कोई ऊँची आवाज़ नहीं थी। परन्तु केवल एक तनाव था। ऐसी सभाएँ जिनमें सहजता नहीं होती थी। ऐसे ईमेल जो आवश्यकता से अधिक ठण्डे प्रतीत होते थे। घर लौटते समय मैं बार-बार उसकी कमियों को स्मरण करता रहता था। उसके बोलने का ढंग, उसकी जिद, और उन बातों को न समझ पाना जो मुझे बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देती थी। मैं इस विषय में परमेश्वर से प्रार्थना भी करता था। और यही सबसे खतरनाक बात थी। मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता था कि वह उसे बदल दे, उसका मन कोमल कर दे, और उसे बातें स्पष्ट रूप से समझने में सहायता करे। सुनने में ये सब बहुत अच्छी प्रार्थनाएँ लगती थीं।

फिर एक दिन दोपहर के समय, एक ऐसी सभा के बाद जो विशेष रूप से अच्छी नहीं थी, मैं अपने कार्यालय में अकेला बैठा था। भवन में शान्ति थी। खिड़की की झिर्रियों से होकर धूप भीतर आ रही थी। तभी एक विचार पूरे बोझ के साथ मेरे मन में आया। उसमें दोषारोपण नहीं था, केवल स्पष्टता थी। “आप सही होने में जितना आनन्द लेते हैं, उतना विश्वासयोग्य बने रहने में आनन्द नहीं लेते हैं।” इस एक वाक्य ने मुझे उससे कहीं अधिक पीड़ा पहुँचाई, जितनी उसने कभी अपने शब्दों से पहुँचाई थी। मैं शान्ति बनाए रखने के लिए संघर्ष नहीं कर रहा था। मैं तो स्वयं को सही सिद्ध करने के लिए संघर्ष कर रहा था। मैं चाहता था कि कहानी में जीत मेरी हो। मैं चाहता था कि मैं वही व्यक्ति दिखाई दूँ जिसके साथ अन्याय हुआ, जिसने बड़ी उदारता से उसे सह लिया। मैं चाहता था कि समस्या वही हो, ताकि मैं स्वयं को निर्दोष समझता रहूँ। रोमियों 3 इस प्रकार की कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ता है। “कोई भी परमेश्वर को नहीं खोजता।” स्वाभाविक रूप से नहीं। सहज प्रवृत्ति से नहीं। हमारी उत्तम प्रवृत्तियों को भी छुटकारे की आवश्यकता है।

जो आपको ठेस पहुँचाते हैं, उनके लिए अनुग्रह

पीड़ित होने का भ्रम यह नहीं है कि दुःख वास्तविक नहीं होता है। वह वास्तविक होता है। परन्तु भ्रम यह है कि दुःख हमें हर बार धर्मी बनाता है। परन्तु ऐसा नहीं है। कभी-कभी दुःख हमें और भी अधिक घोर पापी बना देता है। मैंने ऐसे पतियों के साथ बैठकर बातचीत की है जो पूरी रीति से आश्वस्त थे कि उनके वैवाहिक जीवन की सारी समस्याओं के लिए केवल उनकी पत्नी ही दोषी है। इसी प्रकार ऐसी पत्नियों के साथ भी बातचीत की, जो इसके ठीक विपरीत बात को लेकर पूरी रीति से आश्वस्त थीं। दोनों ही आहत थे। दोनों ही किसी सीमा तक सही थे। लेकिन दोनों अन्ये भी थे। पतित मन बहुत चतुर होता है। वह पीड़ा को भी हथियार बना सकता है। वह वास्तविक घावों को नैतिक श्रेष्ठता का आधार बना सकता है। वह आपको दूसरे के पाप पर ही दृष्टि लगाए रहने दे सकता है, ताकि आपको अपने पाप को न देखना पड़े। और यहाँ वह असुविधाजनक सत्य है जिसे मैंने वर्षों की पासबानी सेवकाई से सीखा है: अधिकाँश विवाद इसलिए नहीं होते रहते कि एक व्यक्ति पूरी रीति से दुष्ट है और दूसरा पूरी रीति से शुद्ध है। वे विवाद इसलिए बने रहते हैं क्योंकि पाप ने ऐसे दो हृदय पा लिए हैं जो स्वयं की रक्षा करना चाहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि दोष हर बार समान होता है। पवित्रशास्त्र न्याय को हल्का नहीं करता है। कुछ पाप अधिक गम्भीर होते हैं। कुछ घाव अधिक गहरे होते हैं। परन्तु स्वयं की जाँच करना इसलिए वैकल्पिक नहीं होता है क्योंकि पहले आपको ठेस पहुँची थी या आपको अधिक पीड़ा सहनी पड़ी थी। जब शाऊल ने दाऊद को मार डालने का प्रयत्न किया, तब भी दाऊद ने पापी होना नहीं छोड़ा। जब उसके भाइयों ने यूसुफ को बेच दिया, तब भी वह निष्पाप नहीं हो गया था। दुःख अपने आप किसी को पवित्र नहीं बनाता। परमेश्वर पवित्र बनाता है।

हमारी पीड़ा पर परमेश्वर का प्रभुता: परीक्षाओं के बीच ईश्वरीय उद्देश्य और सान्त्वना पाना

यहाँ पर बहुत से लोग तनाव में आ जाते हैं। जब आप पीड़ा सह रहे होते हैं, तब परमेश्वर का प्रभुता कठोर प्रतीत हो सकती है। ऐसा लग सकता है मानो परमेश्वर पर भरोसा करने के स्थान पर केवल उसकी व्याख्या की जा रही है। परन्तु पवित्रशास्त्र परमेश्वर के शासन को किसी सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत नहीं करता, वरन् वह उसे जीवन-रक्षक आशा के रूप में प्रस्तुत करता है। यूसुफ की कहानी सरल नहीं है। उसे सहज या हल्का बनाकर मत देखिए। उसके अपने परिवार ने उसके साथ विश्वासघात किया। उसे गड्डे में फेंक दिया गया। उसे पशुओं के समान बेच दिया गया। वह कारागार में भुला दिया गया। उसके विषय में झूठ बोला गया। वर्ष बीत गए। वास्तविक वर्ष। लम्बी रातें। एक-एक करके ऐसे दिन बीतते गए। अर्थात् ऐसे दिन जो आशा को धीरे-धीरे चूर-चूर कर देते हैं। जब अन्ततः यूसुफ अपने भाइयों के सामने खड़ा होता है, तब परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं। अब अधिकार उसके हाथ में था। वह चाहता तो उन्हें नष्ट कर सकता था। परन्तु इसके स्थान पर वह रो पड़ा। “यद्यपि तुम लोगो ने मेरे लिये बुराई का विचार किया था; परन्तु परमेश्वर ने उसी बात में भलाई का विचार किया।” ध्यान दीजिए कि उसने क्या नहीं कहा। उसने उनके पाप का इन्कार नहीं किया। उसने उसे कोई गलतफ़हमी कहकर उसका रूप नहीं बदला। उसने उसे उसी नाम से पुकारा जो वह वास्तव में था, अर्थात् स्पष्ट रूप से बुराई। गम्भीर। अन्यायपूर्ण। और फिर वह उससे भी बड़ी एक सच्चाई का उल्लेख करता है कि परमेश्वर का भी उसमें एक उद्देश्य था।

उस वाक्य का एक गहरा महत्व है। उसका अर्थ यह है कि परमेश्वर ने बाद में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। वह किसी बिगड़ी हुई परिस्थिति को सँभालने के लिए हड़बड़ी नहीं कर रहा था। विश्वासघात से वह आश्चर्यचकित नहीं हुआ। वह उन सब पर अधिकार रखता था, परन्तु वह उसका कर्ता नहीं था। यह भेद अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परमेश्वर प्रभुता करता है। मनुष्य अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी है। ये दोनों बातें सत्य हैं। हम एक सत्य की रक्षा करने के लिए दूसरे सत्य को कम नहीं कर सकते हैं। मैंने ऐसे लोगों के साथ बैठकर बातचीत की है जो इस सत्य से घृणा करते थे, परन्तु कई वर्षों के बाद यही

सत्य उनके लिए सहारा बन गया। आरम्भ में यह उन्हें आपत्तिजनक लगा। “क्या आपका अर्थ है कि परमेश्वर यही चाहता था?” नहीं। बाइबल ऐसा कभी नहीं कहती है। वह यह कहती है कि जिस बात को दूसरों ने बुराई के उद्देश्य से किया, उसी के द्वारा परमेश्वर ने भलाई करने का उद्देश्य पूरा किया। यह ऐसी सान्त्वना नहीं है जिसे आप तुरन्त अनुभव कर लें। यह ऐसी सान्त्वना है जिसे समय के साथ समझते और ग्रहण करते हैं। जैसे टूटी हुई हड्डी धीरे-धीरे जुड़ती है। आरम्भ में तो पीड़ादायक होती है। परन्तु बाद में दृढ़ हो जाती है।

परमेश्वर आपके शत्रु से चकित नहीं होता है। न उस स्पष्ट शत्रु से। न उस छिपे हुए शत्रु से। न उस व्यक्ति से जो मुस्कराता है, और साथ ही साथ आपको दुर्बल बनाता जाता है। न उस व्यक्ति से जिसने आपको उस समय छोड़ दिया जब आप सबसे अधिक असुरक्षित थे। उनमें से किसी ने भी परमेश्वर को चकित नहीं किया। और यह बात समझने में और भी कठिन है। कभी-कभी वह उन्हें शीघ्र नहीं हटाता, क्योंकि वह उसी टकराव का उपयोग कर रहा होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि दुर्व्यवहार उचित है। इसका अर्थ यह है कि दुर्व्यवहार अन्तिम वचन नहीं कहता है। मैं एक बार एक ऐसी स्त्री के साथ चला, जिसने वर्षों तक अपने कार्यस्थल पर चुपचाप होने वाला दुर्व्यवहार सहा। कुछ भी अवैध नहीं था। कुछ भी इतना नाटकीय नहीं था कि उसकी शिकायत की जा सके। केवल लगातार उसे कमजोर किया जा रहा था। उसके कार्य का श्रेय छीन लिया जाता था। उसके प्रति परोक्ष तिरस्कार दिखाया जाता था। उसने वहाँ से निकलने के लिए प्रार्थना की। लेकिन वह शीघ्र नहीं निकल सकी। जो सामने आया, वह स्पष्टता, साहस, और मनुष्य के भय से बढ़कर परमेश्वर का भय था। लोगों की स्वीकृति पाने की आवश्यकता उससे दूर होती गई। जब अन्ततः उसने वह नौकरी छोड़ी, तब वह स्त्री वैसे ही नहीं थी जैसी उस नौकरी में प्रवेश करते समय थी। परमेश्वर ने उसके भीतर ऐसा कार्य किया था, जो आराम और सुविधा के द्वारा कभी नहीं हो सकता था।

जब तक कोई व्यक्ति उस परिस्थिति से होकर गुजर रहा होता है, तब तक यह बात उससे नहीं कही जाती है, जब तक कि आप उसे भली-भाँति न जानते हों। समय का बहुत महत्त्व होता है। शब्द भी ठेस पहुँचा सकते हैं। परन्तु बाद में यही सत्य एक दृढ़ आधार बन जाता है। परमेश्वर शत्रुओं का भी उपयोग छेनी-हथौड़े के समान करता है। इसलिए नहीं कि उसे पीड़ा में आनन्द मिलता है, वरन् इसलिए कि उसे अपने लोगों को अपने पुत्र के स्वरूप में ढालने में आनन्द मिलता है। और वह स्वरूप दुःख सहने के द्वारा ढाला गया था। यीशु विश्वासघात से नहीं बचाया गया। उसे झूठे आरोपों से नहीं बचाया गया। उसे त्यागे जाने से भी नहीं बचाया गया। और इनमें से कोई भी बात व्यर्थ नहीं गई। यदि परमेश्वर बिना निर्दयी बने क्रूस पर घटित होने वाली घटनाओं पर शासन कर सकता है, तो वह बिना अपनी भलाई खोए हुए आपके संघर्ष में भी शासन कर सकता है, यह कोई सिद्धान्त माल नहीं है। और न ही यह आरामकुर्सी पर बैठकर की जाने वाली ईश्वर विज्ञान सम्बन्धी चर्चा का विषय है। जब सभी स्पष्टीकरण समाप्त हो जाते हैं, तब यही सच्चाई सदियों से पवित्र लोगों को स्थिर बनाए रखती आयी है। यदि आपको पीड़ा होती है, तो आप पागल नहीं हैं। यदि आपको उसकी चुभन का अनुभव होता है, तो आप दुर्बल नहीं हैं। परन्तु इस कहानी में आप अकेले नहीं हैं, और न ही उसका अन्तिम न्याय करने वाले आप हैं। संघर्ष की जड़ केवल व्यक्तित्वों और परिस्थितियों में नहीं है। वह मनुष्य के हृदय से होकर उस संसार तक पहुँचती है, जो पाप के कारण अपने सही स्वरूप से विकृत हो गया है। और इन सबके ऊपर एक ऐसा परमेश्वर शासन करता है, जो अपनी प्रभुता में किसी भी पीड़ा को व्यर्थ नहीं जाने देता है। इससे मार्ग सरल नहीं होता, परन्तु वह साकार अवश्य हो जाता है। और उद्देश्यपूर्ण अर्थ ऐसा बोझ उठा लेता है, जिसे आराम और सुविधा कभी नहीं उठा सकते हैं।

2

सबको समान स्तर पर लाने वाला सुसमाचार—हृदय की आत्मिक जाँच

यह स्मरण रखें कि हम क्या थे: अनुग्रह और छुटकारे की हम सबकी समान आवश्यकता पर मनन

उन अधिकाँश लोगों के जीवन में एक समय ऐसा भी आता है जिन्हें गहरी ठेस पहुँची होती है। यह प्रायः शान्त होता है। न कोई बहस। न कोई नाटकीय मोड़। केवल धीरे-धीरे यह बोध होने लगता है कि क्रोध अब... उपयोगी लगने लगा है, अर्थात् रक्षक जैसा। मानो वह एक पहरेदार कुत्ता हो जिसे आपने इतने लम्बे समय तक पाला-पोसा है कि अब आप स्वयं ही निश्चित नहीं हैं कि वह वास्तव में किसकी रक्षा कर रहा है। तभी सुसमाचार आपके सामने आ जाता है। अर्थात् कोमलता से नहीं, परन्तु सच्चाई के साथ। स्मरण रखना एक जोखिम भरी बात है। हम उसे अपनी सुविधा के अनुसार सँवारते हैं। उसमें परिवर्तन करते हैं। जो सबसे बुरा व्यवहार दूसरों ने हमारे साथ किया होता है, उसे हम मानो चलचित्र जैसी स्पष्टता के साथ स्मरण रखते हैं। परन्तु अपने ही पाप को हम हाशिये पर लिखी हुई बात के समान बना देते हैं। अर्थात् छोटे अक्षरों में लिखा हुआ, जिसे सहज ही छोड़ दिया जाता है। बाइबल में इस प्रकार के चुनिन्दा स्मरण की अनुमति नहीं है। रोमियों 5:10 यह नहीं कहता कि परमेश्वर ने हमें गलत समझा था। और यह भी नहीं कहता कि हम केवल भ्रमित थे। साथ ही यह भी नहीं कहता कि हम “मूलरूप से अच्छे लोग थे जिन्हें केवल सही दिशा की आवश्यकता थी।” वरन् वह कहता है कि हम बैरी थे।

शत्रु केवल धीरे-धीरे दूर नहीं होते। वे विरोध करते हैं। वे प्रतिरोध करते हैं। वे पीछे धकेलने का प्रयास करते हैं। अनुग्रह प्राप्त होने से पहले, हम परमेश्वर के प्रति निष्पक्ष नहीं थे। हम किसी घेरे में बैठकर यह प्रतीक्षा नहीं कर रहे थे कि कोई हमें समझाए। हम उसके विरोध में खड़े थे। अपने मन से उसके प्रति शत्रुता रखते थे। अपने जीवन को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने में सन्तुष्ट थे। उसके दिए हुए वरदानों का आनन्द लेते थे, परन्तु उसके अधिकार की उपेक्षा करते थे। यह शब्द—“शत्रु”—अपने भीतर गम्भीर अर्थ रखता है। यह उन मनभावने वाले वृत्तान्तों को हटा देता है जिन्हें हम अपने पुराने जीवन के विषय में स्वयं को सुनाना पसन्द करते हैं। मैंने देखा है कि इस शब्द को सुनकर लोग असहज हो जाते हैं। यहाँ तक कि वे भी जो जीवन भर कलीसिया जाते रहे हैं। विशेषकर वे ही। उन्हें यह शब्द बहुत कठोर और बहुत सीधा लगता है। परन्तु पवित्रशास्त्र हमें नम्र बनाने के लिए हमारी प्रशंसा नहीं करता है। वह सत्य बताता है, ताकि हमारी नम्रता किसी दृढ़ आधार पर टिक सके। परमेश्वर ने ऐसे लोगों से मेल-मिलाप नहीं किया जिनका केवल थोड़ा सा मतभेद था। उसने विद्रोहियों से तथा विश्वासघातियों से मेल-मिलाप किया। ऐसे लोग जिन्होंने अन्धकार को अधिक पसन्द किया, जबकि उजियाला उन्हें सेंट-मेंट में दिया जा रहा था। और उसने पहले यह प्रतीक्षा नहीं की कि हम बदलने लगे या हमारे मन कोमल हो जाएँ। यही बात सब को समान स्तर पर ले आती है।

मुझे स्मरण है कि मैं एक ऐसे व्यक्ति के साथ बैठा था जिसके साथ उसके किसी विश्वसनीय व्यक्ति ने बहुत बड़ा अन्याय किया था। यह सचमुच का विश्वासघात था। ऐसा विश्वासघात जो लोगों के प्रति आपका पूरा दृष्टिकोण ही बदल देता है। जब हम क्षमा के विषय में बात कर रहे थे, तो वह धैर्यपूर्वक सुनता रहा। फिर उसने मुझे रोककर कहा, “परन्तु आप समझते नहीं हैं। वे बेहतर जानते थे।” वह सही कह रहा था। वे सचमुच बेहतर जानते थे। और आप भी। और मैं भी। यही वह कठिन मार्ग है जिसे रोमियों 5 हमें पार करने के लिए बाध्य करता है। हम ऐसे अज्ञानी मूर्तिपूजक लोग नहीं थे जो अन्धकार में भटक रहे थे। हम परमेश्वर के स्वरूप को धारण करने वाले लोग थे, परन्तु सत्य को दबाए हुए थे। हम इतना जानते थे कि उत्तरदायित्व हैं। फिर भी हम उससे दूर भागते रहे। परन्तु परमेश्वर हमारी ओर बढ़ा। हमारे मन फिराने के बाद नहीं, और न ही सब कुछ ठीक हो जाने के बाद। वरन् तब, जब हम अब भी उसके शलु थे। यदि यह सत्य आपके क्रोध को थोड़ा भी धीमा नहीं करता, तो सम्भव है कि आपने इस पर अभी पर्याप्त समय तक मनन नहीं किया है।

वह ऋण जिसे हम चुका नहीं सकते: परमेश्वर की क्षमा को समझने से दूसरों के प्रति हमारा दृष्टिकोण किस प्रकार बदल जाता है

यीशु लोगों को बिना ऊँची आवाज के ऐसे दृष्टान्त सुनाता था, जो उन्हें भीतर तक निरुत्तर कर देते थे। निर्दयी दास का दृष्टान्त उन्हीं में से एक है। एक दास पर राजा का ऐसा ऋण था जिसे वह कभी नहीं चुका सकता था। ऐसा नहीं कि उसे चुकाना केवल कठिन या बोझिल था; परन्तु वह चुकाया ही नहीं जा सकता था। वह इतनी बड़ी धनराशि थी जिसे सुनकर लेखाकार भी हँस पड़ें और सैनिक उसे बेड़ियों में जकड़ने के लिए आगे बढ़ने लगे। परन्तु राजा ने उसका पूरा ऋण क्षमा कर दिया। पूरी रीति से। न कोई क्रिस्तों का झंझट, न ही कोई परखने की अवधि। लेकिन फिर वही दास बाहर निकलता है तो अपने एक संगी दास का गला पकड़ लेता है, क्योंकि उस पर उसकी अपेक्षाकृत बहुत छोटी सी धनराशि ऋण के रूप में थी। यह विवरण महत्त्वपूर्ण है। यीशु यह नहीं कह रहा है कि दूसरा ऋण वास्तविक नहीं था। वह वास्तविक था। जो धन उधार था, वह सचमुच उधार था। जो ठेस पहुँचाई गई थी, वह सचमुच पहुँचाई गई थी। पाप केवल इसलिए पाप होना नहीं छोड़ता क्योंकि किसी दूसरे ने उससे भी बड़ा पाप किया हो। परन्तु दोनों की माता में अन्तर होता है।

मैंने इस दृष्टान्त को अपनी गिनती से कहीं अधिक बार लोगों के जीवन में सच होते हुए देखा है। एक व्यक्ति परमेश्वर से ऐसा अनुग्रह पाता है जिसे वह कभी कमा नहीं सकता था। ऐसी क्षमा, जिसकी कीमत मसीह के लहू से चुकाई गई है। फिर भी वह अपनी शिकायतों को मानो किसी विरासत के समान सँभाले रहता है। उसे सही बातें कहना आता है। वह भजन गाता है। परन्तु उसके हाथ अब भी किसी दूसरे का गला पकड़े हुए हैं। वह कहता है, “वे क्षमा की आशा कैसे कर सकते हैं?” उत्तर वही है अर्थात् जिस प्रकार आपने क्षमा की आशा की थी। यही वह उत्तर है जिसका सामना करने के लिए यीशु हमें विवश करता है, और वह इसे थोड़ा सा भी नरम नहीं करता है। एक बार मैंने एक स्त्री को सलाह देते हुए सहायता की, जो अपने परिवार के एक सदस्य के प्रति दशकों से मन में कड़वाहट लिए हुए थी। हाँ, वहाँ सचमुच पाप हुआ था। उसे कम करके नहीं आँका जा सकता था। परन्तु वह कड़वाहट उसकी पहचान का एक भाग बन गई थी। उसे छोड़ देना मानो अपना प्रभाव खो देना था, मानो यह स्वीकार करना कि उसकी पीड़ा उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं थी जितनी वह समझती थी। हमने इस दृष्टान्त पर न कोई जल्दबाजी, न कोई दबाव डालते हुए धीरे-धीरे मनन किया। एक क्षण ऐसा आया जब उसने लगभग अपने आप से फुसफुसाते हुए कहा, “मुझे उससे कहीं अधिक क्षमा मिली है, जितना मैं स्वीकार करना चाहती हूँ।” वही उसके जीवन का निर्णायक मोड़ था।

जो आपको ठेस पहुँचाते हैं, उनके लिए अनुग्रह

क्षमा का आरम्भ दूसरों के दोषों को उचित ठहराने से नहीं होता है। उसका आरम्भ यह स्मरण करने से होता है कि आपको क्षमा करने के लिए परमेश्वर को क्या मूल्य चुकाना पड़ा। क्रूस केवल हमें दोष से स्वतंत्र नहीं करती; वह हमारे पाखण्ड को भी प्रकट करती है। वह मानो कहती है, कि “आप जितना सोचते थे, उससे कहीं अधिक बुरे हैं—और जितनी आशा करने का साहस आपने किया, उससे कहीं अधिक प्रेम किए गए हैं।” ये दोनों सत्य आवश्यक हैं। यदि इनमें से किसी एक को हटा दिया जाए, तो अनुग्रह या तो केवल भावुकता बनकर रह जाता है, या फिर निराशा में बदल जाता है। हम दूसरों के लिए न्याय और अपने लिए दया चाहते हैं, क्योंकि हम मान लेते हैं कि हमारी कहानी सबसे अलग है। हम अपने इरादों को जानते हैं। हम अपने दबावों को जानते हैं। हम अपनी असफलताओं के पीछे का संदर्भ जानते हैं। परन्तु दूसरों के पापों में हमें केवल उनके परिणाम दिखाई देते हैं। उनकी जागकर बिताई गई रातें नहीं। उनके मन के शान्त भय नहीं। वे घाव नहीं, जिन्होंने उन्हें दूसरों को घाव पहुँचाना सिखाया। इसी असमानता में घमण्ड फलता-फूलता है। वह फुसफुसाकर कहता है, कि “आप उनके जैसे नहीं हैं। आप अधिक सावधान हैं। अधिक सच्चे हैं। अधिक उचित हैं।” परन्तु यह एक झूठ है।

घमण्ड का अन्तः सच्चे मेल-मिलाप को बढ़ाने के लिए अहंकार पर विजय पाने के उपाय

पूर्ण भ्रष्टा का अर्थ यह नहीं कि हम जितने बुरे हो सकते हैं, उतने ही बुरे हैं। इसका अर्थ यह है कि पाप ने हमारे प्रत्येक भाग को प्रभावित किया है। यहाँ तक कि हमारी नैतिक समझ को भी। यहाँ तक कि न्याय के विषय में हमारी समझ को भी। विशेषकर हमारे न्याय की समझ को। मैंने घमण्ड को धार्मिकता का वस्त्र पहने हुए लगभग किसी भी अन्य बात से अधिक विश्वासयोग्यता के रूप में देखा है। उसे धार्मिकता की भाषा बोलनी आती है। उसे बाइबल के वचनों को चुन-चुनकर दोहराना आता है। उसे पश्चात्ताप किए बिना ही दूसरों से उत्तरदायित्व की माँग करना आता है। सच्चा न्याय दया की उपेक्षा नहीं करता। और सच्ची दया न्याय को समाप्त नहीं करती। दोनों का मिलन केवल क्रूस पर होता है, और कहीं नहीं। जो घमण्ड क्षमा करने से इन्कार करता है, वही घमण्ड प्रायः यह भी भूल जाता है कि उसे स्वयं सबसे पहले क्षमा की आवश्यकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि मेल-मिलाप करना हर परिस्थिति में बुद्धिमानी है। बाइबल हमें मूर्खतापूर्ण भरोसा रखने की आज्ञा नहीं देती। सीमाएँ महत्त्व रखती हैं। परिणाम महत्त्व रखते हैं। क्षमा और पुनःस्थापना एक ही बात नहीं है।

परन्तु क्षमा न करने का भाव—वह जो मन को कठोर और पत्थर के समान बना देता है—उसे धारण करने वाले के हृदय के विषय में कुछ प्रकट करता है। एक बार मैंने इस अंश पर प्रचार किया था। उसके बाद एक व्यक्ति मेरे पास आया। उसने न तो वाद-विवाद किया, न ही कोई शिकायत की। उसने केवल इतना कहा, “मुझे लगता है कि मैं अपनी पीड़ा का उपयोग स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझने के लिए कर रहा था।” ऐसा वाक्य ऊँचे स्तर में कहना आसान नहीं होता है। इसके लिए उसे कुछ मूल्य चुकाना पड़ा। परन्तु इसी ने उसे स्वतंत्र भी कर दिया। सुसमाचार हम सबको एक ही स्तर पर ले आता है, क्योंकि वह स्मरण दिलाता है कि क्रूस के चरणों में कोई भी दूसरे से ऊँचा नहीं खड़ा होता है। न वह जिसे ठेस पहुँची है। न वह जो चंगाई देने का साधन बना है। न वह जिसने पहले पश्चात्ताप किया, और न वह जो बाद में करता है। हम सब या तो खाली हाथ आते हैं, या आते ही नहीं। यदि आप दया के बिना न्याय चाहते हैं, तो अन्ततः आप परमेश्वर से ऐसी वस्तु माँगेते हैं जिसे वह देने से इन्कार करता है। और यदि आप न्याय के बिना दया चाहते हैं, तो आप परमेश्वर को ऐसा बना देंगे जो उद्धार नहीं कर सकता।

क्षेत्रीय मार्गदर्शिका

सुसमाचार इन दोनों विक्तियों को अस्वीकार करता है। वह कहता है कि, आप कभी शत्रु थे, परन्तु अब आपको क्षमा मिली है। इसलिए नम्रता के साथ चलें। निर्बलता के साथ नहीं, नम्रता के साथ। नम्रता पीड़ा का इन्कार नहीं करती। वह उसे उसके उचित स्थान पर रखती है। वह स्मरण रखती है कि आपके ऋण का मूल्य किसने चुकाया है। वह दूसरों से स्वयं को श्रेष्ठ समझने की आपकी पकड़ को ढीला कर देती है। वह भींची हुई मुद्रियों को खुले हुए हाथों में बदल देती है। और ऐसा मन— जो धीरे-धीरे और पीड़ा के बीच गढ़ा जाता है—वही एकमात्र ऐसी भूमि होती है जहाँ वास्तविक चंगाई पनपती है।

3

क्षमा एक निर्णय के रूप में — भावनाओं से आगे बढ़कर छोड़ देना

क्षमा के विषय में प्रचलित मिथकों का खण्डन: यह स्पष्ट करना कि बाइबल आधारित क्षमा का वास्तव में क्या अर्थ है

क्षमा के विषय में प्रायः ऐसे बात की जाती है मानो वह एक भावना हो। या मानो वह तब उत्पन्न होती है जब क्रोध शान्त हो जाता है और स्मृतियाँ अपनी कड़वाहट खो देती हैं। मानो एक सुबह आप जागे और आपको यह आभास हुआ हो कि जिसने आपको ठेस पहुँचाई है, उसके प्रति आपके मन में उदारता आ गई है। परन्तु ऐसा लगभग कभी नहीं होता है। अधिकांश क्षमा तब आरम्भ होती है जब घाव अभी भी ताजा रहता है। जब अन्याय अभी भी अन्याय ही प्रतीत होता है। जब मन अब भी उसका मूल्य चुकवाना चाहता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि क्षमा कोई भावना नहीं होती है। वह एक निर्णय है। एक कठिन निर्णय। ऐसा निर्णय जिसे प्रायः एक से अधिक बार लेना पड़ता है। और उसकी कीमत हमेशा ही चुकानी पड़ती है।

यहाँ पहले कुछ बातों को स्पष्ट करना आवश्यक है। बहुत से लोग इसलिए अटके रहते हैं क्योंकि वे क्षमा करने से इनकार करते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है; लेकिन इसलिए करते हैं क्योंकि उन्हें क्षमा की गलत परिभाषा सिखाई गई है। क्षमा का अर्थ भूल जाना नहीं होता है। बाइबल कहीं भी स्मृति खो देने की आज्ञा नहीं देती। परमेश्वर स्वयं पापों को इस प्रकार स्मरण नहीं करता कि उन्हें अपने लोगों के विरुद्ध गिने। ये दोनों बातें एक समान नहीं हैं। स्मरण करना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है; भूल जाना आवश्यक नहीं है। क्षमा का अर्थ बुराई को “सही” कह देना भी नहीं है। क्रूस इस बात का प्रमाण है कि परमेश्वर कभी भी पाप को हल्के में नहीं लेता है। क्षमा अपराध को ईमानदारी से स्वीकार करती है। वह घाव को बिना मुँह मोड़े देखती है। और जो कुछ हुआ है, उसके विषय में केवल शान्ति बनाए रखने के लिए झूठ बोलने से इनकार करती है। क्षमा विश्वास नहीं है। विश्वास समय के साथ स्थापित होता है; क्षमा दी जाती है। बाइबल इस विषय में बहुत ही सावधानी से शिक्षा देती है, चाहे लोग ऐसा न करें। यीशु ने स्वतंत्र रूप से क्षमा किया है, परन्तु बिना विवेक के अपने आप को किसी के भरोसे नहीं सौंपा। बुद्धिमानी अब भी आवश्यक है। उचित सीमाएँ अब भी आवश्यक हैं। परिणाम अब भी बने रहते हैं।

मैंने बहुत से लोगों को बन्धन में पड़े हुए देखा है, क्योंकि वे यह समझते रहे कि क्षमा करने का अर्थ उन द्वारों को फिर से खोल देना है जिन्हें परमेश्वर ने कभी खोलने के लिए नहीं कहा। इस भ्रम ने वास्तव में बहुत हानि पहुँचाई है। क्षमा का अर्थ हर बार मेल-मिलाप नहीं होता है। मेल-मिलाप के लिए दोनों पक्षों का मन फिराना आवश्यक है। परन्तु क्षमा के लिए ऐसा नहीं है। क्षमा एक पक्ष की आज्ञाकारिता होती है। मेल-मिलाप दो पक्षों में होने वाला एक अद्भुत कार्य है। यदि आप दूसरों को बदलने की प्रतीक्षा करते हैं, और तभी उन्हें क्षमा करेंगे, तो आपने अपने प्राणों की कुंजी उन्हीं के हाथ में दे दी है। तब वही यह तय करते हैं कि आप कितने समय तक कड़वाहट में पड़े रहेंगे। और वही यह भी तय करेंगे कि आप कब स्वतंत्र

होंगे। बाइबल कभी भी इतना अधिकार मनुष्य के हाथ में नहीं देती है। क्षमा वह कार्य है जो आप परमेश्वर के सामने करते हैं, न कि ऐसा विषय जिस पर आप अपने अपराध करने वाले के साथ बातचीत या समझौता करें।

हृदय का एक न्यायिक निर्णय: जानबूझकर यह निश्चय करना कि अपराध का ऋण छोड़ दिया जाए

क्षमा का मूल अर्थ एक हस्तांतरण है। यह एक जानबूझकर किया गया कार्य है, जिसमें आप उस ऋण को अपने लेखे-जोखे से हटाकर परमेश्वर के लेखे में डाल देते हैं। प्रत्येक अपराध एक ऋण उत्पन्न करता है। कुछ न कुछ चुकाया जाना चाहिए, एक क्षमा-याचना, क्षतिपूर्ति, स्वीकार, या कभी-कभी केवल यह मान लेना कि अपराध हुआ है। जब वह ऋण नहीं चुकाया जाता, तब हृदय उस पर ब्याज जोड़ना आरम्भ कर देता है, जैसे कि कड़वाहट, दूरी, चुप्पी, और सूक्ष्म दण्ड के रूप में। हम ये तरीके आरम्भ से ही सीख लेते हैं। वे टकराव की अपेक्षा अधिक सुरक्षित और क्रोध की अपेक्षा अधिक सम्मानजनक प्रतीत होते हैं। परन्तु वे तब भी न्याय करने का ही एक रूप हैं। रोमियों की पुस्तक बताती है कि परमेश्वर सारी पृथ्वी का न्यायी है। यह केवल कोई ईश्वर विज्ञान सम्बन्धी कथन नहीं है। यह एक सीमा-रेखा है। जब आप क्षमा करने से इनकार करते हैं, तब आप उस सीमा को लाँच जाते हैं। तब आप केवल उस अपराध का स्मरण ही नहीं करते, वरन् उस व्यक्ति को दण्ड देने के लिए भी ठहराते हैं।

यह बोझ उठाने में बहुत भारी है। अत्यधिक भारी है। मैंने लोगों को इसी बोझ के नीचे टूटते हुए देखा है। उन्हें मूल घाव ने नहीं, वरन् निरन्तर होने वाली परीक्षा ने थका दिया। वही घटना बार-बार मन में दोहराई जाती है। वही मौन निर्णय बार-बार सुनाया जाता है। क्षमा करना वह क्षण होता है जब आप कहते हैं, कि “अब मैं इस ऋण की उगाही करने वाला नहीं रहूँगा।” आप उसे मिटाते नहीं हैं। आप उसके महत्व को भी कम नहीं करते हैं। आप उसे केवल उन्हीं हाथों में सौंप देते हैं जो बिना किसी पक्षपात या भ्रष्टा के उसे संभालने में योग्य हैं। परमेश्वर कभी भी अन्याय को अनदेखा नहीं करता। कोई भी पाप उसकी दृष्टि से छिपा नहीं रहता। कोई भी अपराध यँही लुप्त नहीं हो जाता। या तो उसका दाम क़ूस पर चुका दिया गया है, या फिर उसका उत्तर न्याय के दिन देना होगा। यही सच्चाई क्षमा को सम्भव बनाती है। इसलिए नहीं कि न्याय समाप्त हो जाता है, परन्तु इसलिए कि वह अन्ततः धर्मो हाथों में सौंप दिया जाता है।

जब आप क्षमा करने से इनकार करते हैं, तब आप न्याय की रक्षा नहीं कर रहे होते हैं। परन्तु आप स्वयं न्यायी बनने का प्रयास कर रहे होते हैं। और परमेश्वर का स्थान लेने का प्रयास करना अत्यन्त थका देने वाला काम है। मैंने लोगों को वर्षों तक दूसरों को दूरी बनाकर दण्ड देते हुए देखा है। वे न तो चिल्लाते हैं। और न ही सामना करते हैं। वे केवल अपनापन रोक लेते हैं। अपनी उपस्थिति रोक लेते हैं। अनुग्रह रोक लेते हैं। यह सब नियंत्रित प्रतीत होता है। यह सम्मानजनक प्रतीत होता है। यह सुरक्षित प्रतीत होता है। परन्तु धीरे-धीरे यह प्राण को भीतर से खोखला कर देता है। क्षमा कहती है, कि “अब मैं इस कहानी में परमेश्वर का स्थान नहीं लूँगी।” और यही समर्पण वह स्थान है जहाँ से स्वतंत्रता आरम्भ होती है।

बन्दी की स्वतंत्रता: किस प्रकार दूसरों को क्षमा करना आपके अपने प्राण को कड़वाहट से स्वतंत्र करता है

वर्षों पहले मेरी कलीसिया में एक स्त्री थी। वह विश्वासयोग्य, शान्त और दृढ़ थी। वह उन लोगों में से थी जो बिना किसी पहचान या प्रशंसा की अपेक्षा किए सेवा करते हैं। यदि आप किसी से उसके विषय में पूछते, तो अधिकांश लोग कहते कि उसका जीवन पूरी रीति से व्यवस्थित है। परन्तु ऐसा नहीं था। जब वह छोटी थी, तब उसके पिता उसे छोड़कर चले गए थे।

जो आपको ठेस पहुँचाते हैं, उनके लिए अनुग्रह

न कोई कारण बताया, न ही अलविदा कहा। केवल अनुपस्थिति छोड़ गए। दशको बीत गए। जन्मदिन बीतते चले गए। उसने यदि विवाह समारोह देखे भी, तो केवल दूर से देखे थे। वह चुप्पी इतनी गहरी थी कि उसने उसके पूरे बचपन को आकार दे दिया। परन्तु उसने कभी उसे कड़वाहट नहीं कहा। वह उसे व्यवहारिक दृष्टिकोण कहती थी। एक बार उसने आधे-अधूरे मजाक में कहा, “मैं पुरुषों से अधिक अपेक्षा नहीं रखती।” बहुत समय बाद—बहुत वर्षों के बाद—मसीह ने उस पुराने घाव पर कार्य करना आरम्भ किया। दोष लगाते हुए नहीं, परन्तु निरन्तर।

एक बार उसने मुझसे कहा, कि “मुझे यह समझ में आया कि मैं जीवन भर इसी प्रतीक्षा में रही कि वह लौट आए और जो कुछ गलत हुआ उसे ठीक कर दे। परन्तु वह कभी नहीं लौटा।” और उसी समय क्षमा करना आवश्यक हो गया, इसलिए नहीं कि उसने मन फिराया था। उसने नहीं फिराया था। इसलिए नहीं कि वह बदल गया था। वह नहीं बदला था। क्षमा इसलिए दी गई क्योंकि वह स्वयं बदल गई थी। उसने उसके किए का बहाना नहीं बनाया। उसने उसके साथ मेल-मिलाप नहीं किया। उसने तो उससे फिर कभी बात भी नहीं की। परन्तु उसने उसे स्वतंत्र कर दिया था। उसने कहा, “मैंने उसे परमेश्वर के हाथों में सौंप दिया है। इसलिए नहीं कि वह इसके योग्य था, परन्तु इसलिए कि अब मैं उसका बोझ और अधिक नहीं उठा सकती थी।” लोग प्रायः इसी बात को नहीं समझते हैं। क्षमा मुख्य रूप से अपराध करने वाले के विषय में नहीं है। यह उस व्यक्ति के विषय में है जो इतने समय से उस बोझ को उठाए हुए है।

यीशु इस सम्बन्ध के बहुत अधिक स्पष्ट था। क्षमा न करना बन्दी बना देता है। और उसकी सलाखें भीतर होती हैं। वह स्त्री इसलिए हल्कापन अनुभव करके नहीं चली गई थी कि उसका पिता एक बेहतर मनुष्य बन गया था। वह इसलिए हल्कापन अनुभव करके चली गई क्योंकि मसीह उसके लिए और भी गहरा उद्धारकर्ता बन गया था। क्षमा ने उसके अतीत को मिटाया नहीं। परन्तु उसके अतीत की पकड़ को ढीला कर दिया। और प्रायः ऐसा ही होता है। सब कुछ एक ही बार में नहीं होता। कभी-कभी धीरे-धीरे होता है। कभी आँसुओं के साथ होता है। और कभी जब पुरानी स्मृतियाँ फिर उभर आती हैं, तब उसी निर्णय को फिर से लेना पड़ता है। क्षमा विजय का अनुभव नहीं कराती है। अधिकांश दिनों में वह केवल आज्ञाकारिता जैसी प्रतीत होती है—अर्थात् शान्त, मूल्य चुकाने वाली आज्ञाकारिता। परन्तु यही वह आज्ञाकारिता है जो बन्धियों को स्वतंत्र करती है। उस व्यक्ति को नहीं जिसने आपको ठेस पहुँचाई, परन्तु आपको स्वतंत्र करती है। और वह स्वतंत्रता—जो बहुत अधिक मूल्य चुकाकर प्राप्त हुई है और गहराई से जड़ पकड़ चुकी है—आपसे कोई नहीं छीन सकता है।

4

वास्तविक जीवन में प्रेम को व्यवहार में लाना — सम्बन्धों के लिए आवश्यक कौशल

जो व्यक्ति आपको परेशान करता है उसके लिए प्रार्थना करना: मध्यस्थता के द्वारा अपने हृदय का परिवर्तन करना

अधिकांश लोगों को समस्त मनुष्यजाति से प्रेम करने में कठिनाई नहीं होती है। मनुष्यजाति एक व्यापक विचार है। दूर है। सुरक्षित है। कठिनाई तब आरम्भ होती है जब बात नामों, चेहरों और व्यक्तित्वों तक पहुँचती है। उस व्यक्ति की जो बार-बार बीच में टोकता है। उस स्त्री की जो आपको नीचा दिखाने का प्रयत्न करती है। उस व्यक्ति की जो भली-भाँति जानता है कि आपको किस बात से परेशानी होगी, और फिर भी वह वही करता है। वहीं से सुसमाचार अध्ययन-कक्ष से निकलकर जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में प्रवेश करता है। बाइबल में प्रेम मन की कोई ऐसी दशा नहीं है जिसकी केवल प्रशंसा की जाए। वह एक मार्ग है जिस पर चला जाता है। और प्रायः वह मार्ग ऊबड़-खाबड़ होता है। यीशु ने यह नहीं कहा, कि “अपने शत्रुओं के प्रति मन में स्नेहपूर्ण भाव रखो।” उसने कहा, कि “उनके लिए प्रार्थना करो।” यह आज्ञा जितनी सुनाई देती है, उससे कहीं अधिक दयापूर्ण है। प्रार्थना आपको ईमानदार बना देती है। जब आप परमेश्वर के साथ अकेले होते हैं, तब आप अधिक देर तक सम्मान देने का दिखावा नहीं कर सकते हैं। मन की कटुता शीघ्र ही प्रकट हो जाती है। और व्यंग्य भी। तथा मन से आने वाली आलोचना भी। परमेश्वर इनमें से किसी बात से चकित नहीं होता। वह बहुत समय से मनुष्यों के हृदयों को सुनता आया है।

लोग प्रायः यह गलती करते हैं वे सोचते हैं, कि किसी व्यक्ति के लिए प्रार्थना करने का अर्थ यह है कि मानो वह अब उन्हें परेशान नहीं करेगा। परन्तु ऐसा नहीं होता है। जहाँ आप हैं, वहीं से आरम्भ करें; वहाँ से नहीं, जहाँ आपको लगता है कि आपको होना चाहिए। मैं प्रायः लोगों से कहता हूँ कि वे इस प्रकार प्रार्थना आरम्भ करें: “हे प्रभु, तू जानता है कि मैं इस व्यक्ति के लिए प्रार्थना नहीं करना चाहता।” यह अनादर नहीं है। यह सत्य है। और सत्य ही वह स्थान है जहाँ से प्रार्थना आरम्भ होती है। फिर परमेश्वर से वह करने की प्रार्थना करें जो आप स्वयं नहीं कर सकते। पहले उस व्यक्ति को बदलने की नहीं, वरन् आपको स्थिर रखने की प्रार्थना करें। उससे विनती करें कि वह आपकी जीभ को संयम में रखे, आपकी सहज प्रतिक्रियाओं को कोमल करे, और आपको प्रतिउत्तर में निर्दयी बनने से बचाएँ। समय के साथ, यदि अनुग्रह अनुमति दे, तो उन लोगों के प्राणों के लिए भी आशीष माँगें। उसकी सफलता के लिए नहीं। उसकी योजनाओं के लिए नहीं। परन्तु उनके प्राणों लिए। यही अन्तर है। यह स्वीकार करता है कि वह जो कुछ कर रहा है, वह ऐसे हृदय से निकल रहा है, जो कभी आपके हृदय के समान ही टूटा हुआ था। जब आप किसी व्यक्ति को पाप से छुटकारा दिलाने के लिए परमेश्वर से प्रार्थना कर रहे होते हैं, तब उससे बैर रखना कठिन हो जाता है। असम्भव नहीं, परन्तु कठिन। और कठोरता में यही से दरारें पड़नी

जो आपको ठेस पहुँचाते हैं, उनके लिए अनुग्रह

आरम्भ होती है। मैंने देखा है कि प्रार्थना उन लोगों के जीवन में भी शान्त रीति से कार्य करती है जिन्होंने इसकी कभी आशा नहीं की थी। खीझ पूरी रीति से समाप्त नहीं हुई, परन्तु उसने उनके मन पर अधिकार करना छोड़ दिया। उसने उनके जीवन का संचालन करना छोड़ दिया। प्रार्थना सदैव दूसरे व्यक्ति को नहीं बदलती, परन्तु वह प्रत्येक बार यह व्यवस्थित करती है कि आपके हृदय के सिंहासन पर कौन विराजमान है।

कड़वाहट के बिना सीमाएँ निर्धारित करना: प्रेम में बने रहते हुए अपनी शान्ति की रक्षा कैसे करें

अनुग्रह मूर्खता की माँग नहीं करता है। उस एक वाक्य ने जितने लोगों को बचाया है, आप उतना सोच भी नहीं सकते हैं। आत्मिकता की एक ऐसी धारणा होती है जो क्षमा और स्वयं को हानि के लिए खुला छोड़ देने के बीच कोई भेद नहीं करती, मानो पवित्रता का अर्थ यही हो कि आप हानि की पहुँच में बने रहें। परन्तु पवित्रशास्त्र ऐसा कभी नहीं सिखाता है। यीशु कई बार वहाँ से हट गया। पौलुस रात के समय निकल गया। प्रारम्भिक कलीसिया भी बुद्धिमानी की माँग के कारण गुप्त रूप से एकत्र होती थी। आप किसी व्यक्ति को क्षमा कर सकते हैं और फिर भी अपने द्वार को बन्द रख सकते हैं। सीमाएँ निर्धारित करना प्रेम की असफलता नहीं है। अनेक बार वही प्रेम की अन्तिम अभिव्यक्ति होती है। मैंने ऐसे लोगों के साथ चलकर उनकी सहायता की है जो बहुत लम्बे समय तक खतरनाक परिस्थितियों में बने रहे, क्योंकि वे सोचते थे कि यदि वे वहाँ से चले गए, तो इसका अर्थ होगा कि उन्होंने वास्तव में क्षमा नहीं किया है। यह आत्मिक परिपक्वता नहीं है। यह केवल भ्रम है जिसने धार्मिकता का वस्त्र पहन रखा है। क्षमा ऋण को छोड़ देती है। सीमाएँ वास्तविकता को स्वीकार करती हैं। यदि कोई व्यक्ति लगातार झूठ बोलता है, छल करता है, या चोट पहुँचाता रहता है, तो प्रेम कभी-कभी दूरी बनाए रखने की माँग करता है। दण्ड देने के लिए नहीं, वरन् बुद्धिमानी से अपने उत्तरदायित्व को निभाने के लिए।

कड़वाहट कहती है, “मैं चाहती हूँ कि तुम दुःख उठाओ।” बुद्धि कहती है, “मैं स्वयं को वहाँ नहीं रखूँगी जहाँ हानि होना निश्चित है।” ये दोनों एक ही बात नहीं हैं। कड़वाहट से बनी सीमाएँ द्वार बन्द कर देती हैं और बार-बार हुए अपराध को मन में दोहराती रहती हैं। बुद्धिमानी से बनी सीमा द्वार बन्द करती हैं और उसकी कुंजी परमेश्वर के हाथों में सौंप देती हैं। अन्तर हृदय में दिखाई देता है। एक भीतर-ही-भीतर सुलगती रहती है। दूसरी शोक करती है, फिर विश्राम पाती है। एक बार मैंने ऐसे व्यक्ति को परामर्श दिया जिसे अपने एक पुराने मित्र से अलग होना पड़ा, क्योंकि उसका व्यवहार विनाशकारी हो गया था। जब उसने मुझे यह बताया, तो वह रो पड़ा। इसलिए नहीं कि वह उससे बैर करता था, परन्तु इसलिए कि वह उससे प्रेम करता था और अन्ततः उसने स्वीकार कर लिया कि उसके निकट बने रहना किसी के लिए भी भलाई का कारण नहीं था। मैंने उससे कहा, “यह क्षमा न करना नहीं है। यह विवेक है।” अनुग्रह व्यवहार के बार-बार दिखाई देने वाले ढंगों से आँखें नहीं मूँदता; वह उनका सामना सत्य के अनुसार करता है।

जो आपसे बैर रखते हैं उनका भला करो: आत्मिक विजयी के साधन के रूप में भलाई

यही वह स्थान है जहाँ प्रेम केवल एक विचार नहीं रह जाता, परन्तु अनुचित सा प्रतीत होने लगता है। यीशु ने किसी बड़े या नाटकीय कार्य का सुझाव नहीं दिया। यीशु ने रोटी की बात की। पानी की बात की। साथ चलने वाले मीलों की बात की। ऐसे साधारण कार्यों की बात कही जो कठिन परिस्थितियों में किए जाते हैं। जो आपसे बैर रखता है, उसके साथ भलाई करना जीतने के बारे में नहीं है। यदि जीतना ही आपका उद्देश्य है, तो आप पहले ही हार चुके हैं। हृदय इस अन्तर को जानता है। छोटी-छोटी भलाईयाँ महत्व रखती हैं, क्योंकि वे दिखावे को दूर कर देती हैं। किसी के लिए चाय खरीद देना। सहायता

करना। जब व्यंग्य करना अधिक आसान हो, तब भी आदर के साथ बोलना चाहिए। मैं एक बार ऐसी स्त्री को जानता था जो उस सहकर्मि के लिए पकवान लेकर गई थी, जिसने उसे नौकरी से निकलवाने का प्रयास किया था। न कोई बातचीत। न कोई सामना। केवल चुपचाप उसकी मेज़ पर रखी हुई एक भेंट थी। जब मैंने उससे पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया, तो उसने कहा, “क्योंकि मैं नहीं चाहती कि उसका पाप मुझे यह सिखाए कि मुझे कैसे पाप करना है।” यही सही मनोभाव है। भलाई करना मेल-मिलाप की निश्चितता नहीं है। कभी-कभी इससे लोग उलझन में पड़ जाते हैं। कभी-कभी वे और भी अधिक चिढ़ जाते हैं। प्रेम का माप उसके परिणामों से नहीं होता, वरन् आज्ञाकारिता से होता है।

और आज्ञाकारिता मूल्य माँगती है। ये कार्य सीमाओं को समाप्त नहीं करते। वे बुद्धिमानों का इन्कार भी नहीं करते। वे केवल बैर को आपके जीवन की कहानी नहीं लिखने देते हैं। पौलुस कहता है, “बुराई से न हारो परन्तु भलाई से बुराई को जीत लो।” यह भावुकता नहीं है। यह विचारपूर्वक अपनाया गया मार्ग है। बुराई अनुकरण के द्वारा फैलती है। भलाई उस क्रम को तोड़ देती है। ऊँचे शब्दों से नहीं, परन्तु शान्त रहकर। और वास्तविक सामर्थ्य इसी शान्ति में पाई जाती है। यदि पहली शताब्दी में जीभ खतरनाक थी, तो आज अंगूठा उससे भी अधिक विनाशकारी है। सामाजिक माध्यम शीघ्र प्रतिक्रिया, आक्रोश और दिखावे को बढ़ावा देते हैं। इनमें से कोई भी बात भक्तिपूर्ण जीवन को उत्पन्न नहीं करती है। सार्वजनिक रूप से अपना बचाव करने का प्रलोभन बहुत प्रबल होता है, विशेषकर जब आपके विषय में गलत बातें कही जाती हैं। विशेषकर तब, जब चुप रहना हार मान लेने के समान प्रतीत होता है। परन्तु पवित्रशास्त्र इस विषय पर आश्चर्यजनक रीति से शान्त है। “कोमल उत्तर सुनने से जलजलाहट ठण्डी होती है” “अपने मार्ग की चिन्ता यहीवा पर छोड़।” “अपने आप को उसके हाथ में सौंप दे, जो धर्म के अनुसार न्याय करता है।” इस क्रम पर ध्यान दें। परमेश्वर तुरन्त आपका पक्ष सिद्ध करने की उतावली नहीं करता है।

मैंने लोगों को अपनी कहानी पर नियन्त्रण रखने के प्रयास में अपने ही हाथों अपना सर्वनाश करते देखा है। स्क्रीनशॉट। लम्बी ऑनलाइन टिप्पणियाँ। प्रार्थना के निवेदन के रूप में छिपे हुए सूक्ष्म ताने। इसका अन्त कभी अच्छा नहीं होता है। आपको हर झूठ का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। आपको हर आरोप का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। आपको अपरिचितों के सामने अपनी निर्दोषता सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। कई बार सबसे विश्वासयोग्य उत्तर देने में भी संयम रखना होता है। इसका अर्थ निष्क्रिय बने रहना नहीं है। इसका अर्थ यह चुनाव करना है कि किससे बात करनी है। कुछ बातचीत सार्वजनिक मंचों के लिए नहीं, वरन् निजी स्थानों के लिए होती हैं। कुछ ऐसे बचाव हैं जिन्हें परमेश्वर आपसे कहीं उत्तम रीति से सम्भालता है। चुगली टकराव की तुलना में कम प्रतीत होती है, परन्तु अन्त में उसका बोझ कहीं अधिक भारी होता है। वह विश्वास को तोड़ देती है। वह हृदय को सत्य के स्थान पर अपने पक्ष में लोगों को खोजने का अभ्यास कराती है। अपने मुँह—और अपने अंगुठों—को शान्त रखना निर्बलता नहीं है। यह आत्म-संयम है। मैं वर्षों से लोगों से यह कहता आया हूँ कि, यदि आप किसी बात को उस व्यक्ति की उपस्थिति में नहीं कह सकते, तो उसके अनुपस्थित रहने पर भी उस बात को न कहें। केवल यही एक नियम हमारे आधे विवादों को समाप्त कर सकता है। अनुग्रह प्रायः संयम के रूप में दिखाई देता है। मौन। प्रतीक्षा। इसलिए नहीं कि सत्य का कोई महत्व नहीं है, वरन् इसलिए कि उचित समय का महत्व होता है।

अनुग्रह के हाथ और पैर: परमेश्वर के प्रेम और सेवा को जीवन में उतारने के व्यावहारिक उपाय

इनमें से कोई भी बात सरल नहीं है। जो कोई यह कहता है कि यह सरल है, तो उसने वास्तव में इस मार्ग पर चलकर नहीं देखा है। वास्तविक जीवन में प्रेम करना मूल्य माँगता है। यह आपकी नींद लेता है। आपका अभिमान लेता है। यह सब कुछ अपने नियन्त्रण में रखने के भ्रम को भी छीन लेता है। परन्तु यही प्रेम आपको स्वतंत्र भी करता है। जब अनुग्रह को व्यावहारिक जीवन में लाया जाता है, तब वह धीरे-धीरे आपके भीतर एक गहरा परिवर्तन लाता है। वह परिणामों पर आपकी पकड़ को ढीला कर देता है। वह आपको कठिन मार्ग पर भी हल्के कदमों से चलना सिखाता है। वह आपको ऐसे संसार में भी मनुष्य बनाए रखता है, जो निरन्तर आपको कठोर बनाने का प्रयत्न करता है। आप यह सब पूर्ण रीति से नहीं कर पाएँगे। कोई भी नहीं कर पाता है। कभी आप चूक जाएँगे। कभी आपका धैर्य टूट जाएगा। कभी आप उन वार्तालापों को बार-बार स्मरण करेंगे जिन्हें आप चाहते थे कि और अधिक बुद्धिमानी से संभाला जाए। ऐसे समय में भी अनुग्रह आपके साथ उपस्थित रहता है।

मसीही जीवन प्रेम पर अधिकार पाने के विषय में नहीं है। यह तो प्रेम के द्वारा बार-बार अपने ऊपर अधिकार होने देने के विषय में है, जब तक कि धीरे-धीरे हमारी स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ बदलने न लें। यह परिवर्तन एक ही रात में नहीं होता, वरन् वर्षों के दौरान होता है। विश्वास सदा से इसी प्रकार कार्य करता आया है—रसोईघरों में, कार्यालयों में, किराने की दुकानों की पंक्तियों में, और उन सभी स्थानों में जहाँ प्रेम को केवल शब्दों से नहीं, परिश्रम के साथ जीना पड़ता है। जब ऐसा होता है, तब लोग ध्यान देते हैं। इसलिए नहीं कि आप प्रभावशाली हैं, परन्तु इसलिए कि आपकी स्वाभाविक प्रवृत्ति से कहीं अधिक दृढ़ कोई बात आपको स्थिर बनाए रखती है। और उस बात का एक नाम अनुग्रह है।

5

शान्ति स्थापित करने वाले का प्रतिफल — मसीह की शान्ति में विश्राम

समझ से परे शान्ति: अशान्त संसार में अलौकिक शान्ति का अनुभव

एक प्रकार की थकावट ऐसी होती है जो काम करने से नहीं आती। वह निरन्तर सतर्क बने रहने से आती है। बीती हुई बातचीतों को बार-बार मन में दोहराने से आती है। उन तर्कों का अभ्यास करते रहने से आती है जिन्हें आप कभी पूरा कह ही नहीं पाएँगे। इस भय में सदा सतर्क रहने से आती है कि कहीं घाव फिर से न खुल जाए। ऐसी थकावट हड्डियों तक में बस जाती है। अधिकाँश लोग तब तक यह नहीं समझते कि प्रतिशोध कितनी शक्ति और सामर्थ्य माँगता है, जब तक वे उसका पीछा करना छोड़ नहीं देते। और जब वे ऐसा करते हैं, तब कुछ अप्रत्याशित घटित होता है। पवित्रशास्त्र उस प्रकार की शान्ति की प्रतिज्ञा नहीं करता जैसे संसार करता है। वह ऐसी अस्थिर शान्ति नहीं है जो परिस्थितियों के अनुकूल रहने पर ही बनी रहे। वह ऐसा युद्धविराम भी नहीं है जो केवल तब तक टिका रहता है जब तक कि कोई उकसाए नहीं। मसीह की शान्ति तब आती है जब आपके भीतर कुछ और भी गहरा अन्ततः शान्त हो जाता है। जब आप प्रतिशोध लेना छोड़ देते हैं—चाहे वह खुलकर हो या मन ही मन—तब आपका प्राण मानो गहरी साँस लेता है। इसलिए नहीं कि न्याय समाप्त हो गया है, परन्तु इसलिए कि अब आप उसे अपने ही हाथों से स्थापित करने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। आपके मन में चलने वाली न्याय-सभा अन्ततः स्थगित हो जाती है। जिस विषय को आप बार-बार फिर से खोलते रहे हैं, वह अब परमेश्वर को सौंप दिया जाता है।

वही शान्ति वास्तव में सारी समझ से परे है। इसलिए नहीं कि वह कोई रहस्यमय अनुभव है, परन्तु इसलिए कि वह शारीरिक स्वभाव की दृष्टि में तर्कसंगत नहीं लगती है। हमारे भीतर की प्रत्येक प्रवृत्ति कहती है, “पकड़े रहो। सतर्क रहो। उन्हें यूँ ही मत जाने दो।” शान्ति कहती है, “तुम न्यायी नहीं हो। तुम सुरक्षित हो।” मैंने लोगों के जीवन में इस परिवर्तन को कभी धीरे-धीरे और कभी एकाएक आते देखा है। प्रायः आँसुओं के साथ आते हुए देखा है। क्रोध हमेशा उसी क्षण समाप्त नहीं होता, परन्तु वह अपना अधिकार खो देता है। वह अब उनके जीवन को संचालित करने वाली बात नहीं रहती है। नौद अधिक सहज आने लगती है। प्रार्थना बोझिल नहीं लगती। हृदय अधिक शान्त होने लगता है। वह संवेदनहीन नहीं होता, परन्तु शान्त हो जाता है। इन दोनों में अन्तर है। शान्ति का अर्थ यह नहीं कि आप जो कुछ हुआ उसे भूल जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि जो हुआ वह अब आप पर अधिकार नहीं रखता है। ऐसा विश्राम एक वरदान है। अनेक विश्वासी इस वरदान को ग्रहण ही नहीं कर पते हैं, क्योंकि उन्हें भय होता है कि यदि वे शान्ति को अपना लेंगे, तो वे फिर से असुरक्षित हो जाएँगे। परन्तु पवित्रशास्त्र इसके ठीक विपरीत कहता है। वह आपको स्वतंत्र करता है।

यीशु मसीह के समान बनना: मेल स्थापित करने के द्वारा चरित्र परिवर्तन की यात्रा

यदि क्षमा कभी आपको अस्वाभाविक लगे, तो उसका कारण यही है कि वह वास्तव में स्वाभाविक नहीं है। वह हमारी स्वाभाविक प्रवृत्ति के विरुद्ध चलती है। आत्म-सुरक्षा के विरुद्ध। अभिमान के विरुद्ध। और इसी कारण वह हमारे चरित्र को इतनी गहराई से परिवर्तित करती है। इसका सबसे स्पष्ट चिह्न कोई विचार या सिद्धान्त नहीं है। वह लड़लुहान है। सबके सामने प्रकट हुआ। और अन्तिम है। क्रूस पर से यीशु ने पीड़ा समाप्त हो जाने के बाद क्षमा नहीं किया। उसने उस समय क्षमा किया जब कीलें अभी भी अपना काम कर रही थीं। जब उपहास चारों ओर गूँज रहा था। जब अन्याय अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। “हे पिता, इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।” यह दुर्बलता नहीं थी। यह संयम में रखा हुआ अधिकार था। यीशु यह दिखावा नहीं कर रहा था कि पाप वास्तविक नहीं था। वह उसे अपने ऊपर उठा रहा था। उसे सह रहा था। उसे वहाँ तक ले जा रहा था जहाँ उसका अन्ततः न्याय हो सके। जब भी कोई मसीही व्यक्ति क्षमा करने का निर्णय लेता है, तो वह उसी मार्ग पर चल रहा होता है, न कि वह प्रायश्चित्त कर रहा होता है। उद्धार नहीं, परन्तु प्रकट करना

क्षमा आपको कम स्तर का मनुष्य नहीं बनाती है। वह आपको और अधिक मसीह के समान बनाती है। मैंने लोगों को इस सत्य को हृदय से ग्रहण करते हुए प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तित होते हुए देखा है। उनका व्यवहार अधिक कोमल हो जाता है। उनके शब्द अधिक संयमित हो जाते हैं। वे इस प्रकार जीना छोड़ देते हैं मानो प्रत्येक ठेस उनकी पहचान के लिए एक खतरा हो। वे किसी एक के समान दिखाई देने लगते हैं। इसलिए नहीं कि उन्होंने अनुग्रह पर अधिकार प्राप्त कर लिया है, परन्तु इसलिए कि अनुग्रह ने उन पर अपना अधिकार स्थापित करना आरम्भ कर दिया है। यह समानता अधिक प्रयास करने से नहीं आती। यह क्रूस के चरणों में अधिक समय बिताने और उसे यह निर्धारित करने देने से आती है कि वास्तव में क्या महत्त्वपूर्ण है। यीशु ने अपने अधिकारों को पकड़े नहीं रखा। और इसी कारण उसने हमारे लिए शान्ति सुनिश्चित की। क्षमा करना सीखने के लिए इससे अधिक सुरक्षित स्थान कोई नहीं है।

सब प्रकार के बैर का अन्तः परमेश्वर की अन्तिम बहाली की अनन्त आशा में विश्राम

पवित्रशास्त्र हमें कभी यह भूलने नहीं देता कि यह संसार अस्थायी है। त्याग देने योग्य नहीं, परन्तु अस्थायी है। और इसका महत्त्व हमारी सोच से कहीं अधिक बढ़कर है। जितने भी बैर-विरोध आपने इस संसार में देखे हैं, उन सबका एक अन्त निश्चित है। नए आकाश और नई पृथ्वी में कोई बैर नहीं होगा। न कोई उपेक्षा, न कोई अनसुलझी कड़वाहट, न किसी से सोच-समझकर दूर रहने की आवश्यकता। न कोई ऐसा नाम जिसे सुनते ही हृदय फिर से जकड़ जाए। वहाँ कोई शत्रु नहीं होगा। वह भविष्य वास्तविकता से भागना नहीं है, परन्तु हमारी दिशा है। वह हमें बताता है कि परमेश्वर हमें किस उद्देश्य के लिए तैयार कर रहा है। हम अभी से स्वर्ग के लिए अभ्यास कर रहे हैं। क्षमा का प्रत्येक कार्य उसी का अभ्यास है। प्रतिशोध लेने के स्थान पर प्रेम करने का चुनाव आने वाले संसार के साथ स्वयं को मिलाने का एक छोटा-सा कदम है। हम उस भाषा को सीख रहे हैं जिसे एक दिन हम पूरी रीति से धारा-प्रवाह के साथ बोलेंगे।

इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अभी होने वाले अन्याय को अनदेखा करें। इसका अर्थ यह है कि हम उसे अपने जीवन की स्थायी पहचान न बनने दें। मैंने ऐसे लोगों को गाड़ा है जो अपने बैर भाव को कब्र तक साथ लेकर गए थे। और मैंने ऐसे लोगों को भी गाड़ा है जिन्होंने वर्षों पहले ही उन बैर-भावों को छोड़ दिया था। दोनों के जीवन में अन्तर स्पष्ट दिखाई देता

है। एक जीवन अधूरा सा लगता है। दूसरा पूर्ण और शान्त। इसलिए नहीं कि सब कुछ ठीक हो गया था, परन्तु इसलिए कि शान्ति ने उनके हृदय में जड़ पकड़ ली थी। यीशु ने कहा, “धन्य हैं वे, जो मेल कराने वाले हैं।” इसलिए नहीं कि वे संघर्ष से बचते हैं, परन्तु इसलिए कि वे संघर्ष के बीच से होकर भी उस वस्तु के समान नहीं बनते जिससे वे घृणा करते हैं। वे परमेश्वर के पुत्र कहलाएँगे। यह नाम उन पर इसलिए शोभा देता है, क्योंकि वे अपने पिता के समान दिखाई देते हैं। मेल कराना अतीत को मिटा नहीं देता है। वह भविष्य को छुटकारा पाए हुए बना देता है। यह इस वर्तमान युग पर आपकी पकड़ को ढीला करता है और आने वाले युग के लिए आपके हृदय को तैयार करता है। और जब अन्ततः आप विश्राम पाएँगे—केवल शारीरिक रूप से नहीं, वरन् गहराई से—तब आप महसूस करेंगे कि प्रतिफल कभी नियंत्रण नहीं था। वह तो शान्ति थी, अर्थात् मसीह की शान्ति। और वही पर्याप्त है।

बदला लेना मेरा काम है, प्रभु कहता है: न्याय के लिए परमेश्वर पर भरोसा करना और प्रतिशोध छोड़ देना

परन्तु प्रकाशितवाक्य 6 यह भी बताता है कि वे शहीद पवित् जन, जो पहले से ही स्वर्ग में हैं, प्रभु से पूछते हैं कि उन्हें न्याय मिलने के लिए और कब तक प्रतीक्षा करनी होगी। वे कब तक प्रतीक्षा करें कि परमेश्वर उनके लहू का पलटा ले। वे यह नहीं पूछते कि परमेश्वर न्याय करेगा या नहीं, परन्तु यह पूछते हैं कि वह कब करेगा। क्या प्रभु उनके इस प्रश्न के लिए उन्हें डाँटता है? क्या वह उनके क्षमा न करने की ओर संकेत करता है? नहीं। परमेश्वर ऐसा कुछ नहीं करता। वह धैर्यपूर्वक उनसे कहता है कि वे थोड़ा और विश्राम करें, जब तक कि उनके समान गवाही देने वाले और भी लोग उनकी गिनती में सम्मिलित न हो जाएँ। प्रकाशितवाक्य की पुस्तक स्पष्ट करती है कि परमेश्वर के लोगों के लिए न्याय अवश्य आएगा, परन्तु परमेश्वर के ठहराए हुए समय पर आएगा। और वह प्रभु यीशु की तलवार के द्वारा आएगा, अर्थात् मेरे प्रकोप के द्वारा होगा।

प्रकाशितवाक्य यह प्रकट करता है कि उस संसार को, जो परमेश्वर की क्षमा को स्वीकार नहीं करना चाहता है, उसे पर्याप्त चेतावनी और गवाही दी जा चुकी है और दी जाएगी। और वही, जो सबसे उत्तम बलिदान के मेरे रूप में बना, जो सबसे दुष्ट पापियों को भी शुद्ध करने के लिए पर्याप्त है, वही मेला उन पापियों पर परमेश्वर का प्रकोप भी प्रकट करता है जो मन नहीं फिराते हैं।

व्यवस्था तोड़ने वालों को अपने किए हुए अपराधों का दण्ड अवश्य भुगतना चाहिए। परन्तु किसके द्वारा? ऐसे मामलों में दण्ड देना उचित और अच्छा है। परन्तु कब? जब किसी व्यक्ति या लोगों के किसी समूह के साथ घोर अन्याय किया गया हो, तब हम उचित ही न केवल सुरक्षा, परन्तु न्यायसंगत प्रतिफल भी चाहते हैं। फिर भी हम समझते हैं कि इस जीवन में हमारे अपने दण्ड देने के तरीके सदैव निष्पक्ष नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी प्रियजन की हत्या कर दी जाए, तो न धन का कोई भुगतान और न ही कारावास उस प्रियजन को वापस ला सकता है। इसलिए हम पूर्ण न्याय की उचित अभिलाषा करते हैं। परन्तु हम यह भी जानते हैं कि परमेश्वर के सिद्ध न्याय का वह दिन, जब वह हर आँसू पोछेगा, अभी नहीं आया है। इसी कारण मनुष्यों के द्वारा दिया गया न्याय प्रायः अपर्याप्त सिद्ध होता है।

यहाँ एक संघर्ष है। मसीही होने के नाते, हम मसीह में पहले ही नई सृष्टि हैं (2 कुर. 5:17)। हम पहले ही एक नए राज्य का हिस्सा हैं, जिसका एक नया राजा है। मेला हमारा प्रभु और उद्धारकर्ता है, जिसने संसार पर जय प्राप्त कर ली है। हम उद्धार के हर पक्ष के लिए उसी की ओर देखते हैं, जिसमें न्यायसंगत प्रतिफल, हानि की भरपाई, और उसके ठहराए हुए

जो आपको ठेस पहुँचाते हैं, उनके लिए अनुग्रह

समय पर दण्ड देना भी सम्मिलित है। और वह ऐसा अवश्य करेगा। वही पाप से उद्धार करने वाला और बुराई से छुटकारा देने वाला है।

दूसरी ओर, हम अब भी इसी संसार में रहते हैं, और इस पर शासन करने वाले अधिकारियों की कमियों के बावजूद भी हमें उनके अधीन रहना पड़ता है। क्योंकि वे बुराई करने वालों, यहाँ तक कि आक्रमण करने वाले राष्ट्रों पर भी, परमेश्वर का दण्ड प्रकट करने के लिए उसके हाथ का साधन हैं। फिर भी मानवीय अधिकारी कभी भी पूर्ण न्याय नहीं कर सकते हैं।

केवल परमेश्वर का मेम्रा ही उन लोगों पर, जो उसके अनुग्रह से भरे सुसमाचार को अस्वीकार करते हैं, परमेश्वर का अन्तिम प्रकोप पूर्ण रीति से और धार्मिकता के साथ उण्डेला जाएगा। अपने उद्धारकर्ता के पुनः आगमन से प्रेम करने का अर्थ उसके सिद्ध दण्ड से भी प्रेम करना है, और उस दण्ड के योग्य हम भी ठहरते, यदि उसका बहुमूल्य लहू हमें न ढकता।

सुसमाचार का यह पक्ष आदम और हव्वा के पतन तक पहुँचा हुआ है। वहाँ परमेश्वर ने प्रतिज्ञा की कि स्त्री का वंश सर्प के सिर को कुचल देगा, जबकि सर्प केवल उसकी एड़ी को डसेगा (उत. 3:15)। यह केवल यीशु और शैतान के बीच की शत्रुता की ओर ही संकेत नहीं करता, वरन् स्त्री की सन्तान और सर्प की सन्तान के बीच की शत्रुता की ओर भी संकेत करता है।

यह सत्य है कि प्रायः हम नहीं जानते कि कौन किस पक्ष में है, क्योंकि यह किसी व्यक्ति के जीवन के अन्त तक निश्चित नहीं होता है। इसलिए हम इसे यह कहने का बहाना नहीं बना सकते कि कौन क्षमा करेगा और कौन नहीं करेगा। यह शैतान का बिछाया हुआ जाल है। हमें सत्तर गुना सात बार क्षमा करना है, ठीक वैसे ही जैसे हमें क्षमा किया गया है।

परन्तु यह प्रतिज्ञा कि परमेश्वर का मेम्रा ही वह सिद्ध न्यायी है, जो ऐसा पूर्ण न्याय करेगा जैसा हम कभी नहीं कर सकते, और यही प्रतिज्ञा हमें यह शान्ति देती है कि हम परमेश्वर के पवित्र अनुग्रह और उसके पवित्र न्याय में विश्राम करेंगे।



निष्कर्ष:

बरामदे से अन्तिम संदेश

मैं इसका समापन उसी प्रकार करना चाहता हूँ, जैसे वर्षों से अनेक कठिन बातचीतों का समापन होता आया है। किसी मेज के पीछे बैठकर नहीं। किसी मंच से नहीं। वरन् एक बरामदे में बैठकर। साँझ का बुँधलाता प्रकाश। भार पड़ने पर चरमराते हुए लकड़ी के तख्ते। ऐसा स्थान जहाँ लोग अब बहस नहीं करते। वे केवल सत्य कहते हैं और उसे मन पर प्रभाव डालने देते हैं। वर्षों पहले, मैंने एक छोटे से पुल को किसी ग्रामीण कस्बे के बाहर फिर से बनते देखा था। वह एक तूफान के दौरान बह गया था। एक ही बार में नहीं। परन्तु धीरे-धीरे करके। उसके तख्ते कमजोर होते चले गए। उसके आधार खोखले हो गए। फिर एक सुबह वह पूरी तरह टूट गया, और सड़क बीच में ही समाप्त हो गई। लम्बे समय तक लोगों को दूसरे मार्ग से जाना पड़ा। अधिक दूरी तय करनी पड़ी। अतिरिक्त मीलों की यात्रा करनी पड़ी। उन्होंने स्वयं को उस परिस्थिति के अनुसार ढाल लिया था। कुछ लोग तो यह भी भूल गए कि वहाँ कभी कोई पुल भी था। दूसरे लोग असुविधा की शिकायत करते रहे, परन्तु किसी ने उसे ठीक करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। फिर एक दिन कुछ कारीगर आए। पुल के बारे में बात करने के लिए नहीं, परन्तु उसे फिर से बनाने के लिए। शहतीर पर शहतीर। पसीना। शोर। समय। और फिर वह मार्ग चुपचाप फिर से खुल गया। कोई समारोह नहीं हुआ। बस वहाँ आगे बढ़ने का मार्ग बन गया जहाँ पहले कोई मार्ग नहीं था। अधिकाँश समय तक मेल कराना ऐसा ही दिखाई देता है। न कोई नाटकीय मेल-मिलाप का दृश्य। न सब कुछ सुलझ जाने वाला अन्त। केवल धीमी आज्ञाकारिता। मूल्य चुकाने वाली आज्ञाकारिता। ऐसी आज्ञाकारिता जो उस मार्ग को फिर से तैयार करती है, जिस पर सम्भव है कि आप उस दूसरे व्यक्ति के साथ कभी पूरी रीति से चल भी न पाएँ। परन्तु कोई और उस पर चलेगा। और आपको तो वैसे भी विश्वासयोग्य बने रहना था।

यह वह सच्चाई है जिसे अन्त में स्पष्ट रूप से कहना आवश्यक है: कि आप यह सब अपनी सामर्थ्य से नहीं कर सकते हैं। अधिक समय तक नहीं कर सकते। सच्चे मन से नहीं कर सकते। और ऐसा किए बिना आप कठोर, घमण्डी या अत्यधिक मानसिक थकावट से भर न जाएँगे। जो कोई इसके विपरीत कहता है, कि उसने कभी गहरे घावों को सचमुच क्षमा करने का प्रयास नहीं किया है। इस प्रकार का प्रेम कोई स्वाभाविक गुण नहीं है। यह पवित आत्मा का कार्य है। पवित आत्मा पीड़ा को मिटा नहीं देता; वह उसके बीच आपको स्थिर बनाए रखता है। जब पुरानी प्रवृत्तियाँ फिर से प्रबल होकर लौटती हैं, तब

जो आपको ठेस पहुँचाते हैं, उनके लिए अनुग्रह

वह आपको स्मरण कराता है कि आप किसके हैं। वह प्रतिशोध लेने की तत्काल प्रतिक्रिया को रोकता है। जब बोलने की अपेक्षा चुप रहना अधिक बुद्धिमानी होती है, तब वह संयम देता है। जब आज्ञाकारिता आपको असुरक्षित प्रतीत होती है, तब वह साहस देता है। और कभी-कभी, बिना किसी शोर के, वह आपको शान्ति देता है, इससे भी पहले कि आपको लगे कि आप उस शान्ति के योग्य हैं।

यदि आप यह पढ़ रहे हैं और आपके मन में पहले ही किसी का नाम उभरने लगा है, तो उसे दबाएँ नहीं। उसे ढकने का प्रयास न करें। उसे आत्मिक शब्दों में ढालकर किसी अस्पष्ट विचार में परिवर्तित न करें। परमेश्वर के सामने ईमानदारी से उस व्यक्ति को पहचानिए जिसने आपको ठेस पहुँचाई, जिसने आपको निराश किया, और जिसका नाम आज भी बातचीत में आने पर आपके हृदय को भारी कर देता है। परमेश्वर स्पष्ट सच्चाई से विचलित नहीं होता। वह सामान्य बातों के साथ नहीं, वरन् सत्य के साथ कार्य करता है। उस व्यक्ति को परमेश्वर के हाथों में सौंप दीजिए। किसी नाटकीय शब्दों के साथ नहीं, परन्तु सच्चे मन से। उससे कहिए कि वह ऋण आपको कैसा प्रतीत होता है। उससे कहिए कि आप क्या पाना चाहते थे, जो आपको कभी नहीं मिला। उससे कहिए कि आपके भीतर कड़वाहट अब भी कहाँ वास करती है। और फिर, सोच-समझकर, न्याय करने का अधिकार छोड़ दीजिए। इसलिए नहीं कि ऐसा करना आपको उचित प्रतीत होता है, परन्तु इसलिए कि यही उचित है। क्योंकि न्यायी आप नहीं हैं। और इसलिए भी कि वह बोझ उठाने के लिए आपको कभी नहीं कहा गया था। पवित्र आत्मा को वह कार्य करने दीजिए जो केवल वही कर सकता है। पाप, समय और भय ने जो कुछ तोड़ दिया है, उसे फिर से बनाने दीजिए। वह आपको ऐसा मेल कराने वाला बनाए कि जो आज आपको मूल्य चुकाने जैसा प्रतीत होता है, वही आगे चलकर आपके लिए सच्ची स्वतंत्रता बन जाए।

और जब आप आगे बढ़ें, तो इस आशीष को सरलता और स्पष्टता के साथ सुनें। शान्ति का परमेश्वर आपके हृदय की रक्षा करे, जब पुराने घाव फिर से पीड़ा देने लगें। पवित्र आत्मा आपको संयम प्रदान करे, जब क्रोध शीघ्रता से उठ खड़ा हो जाए; और जब प्रेम के कारण दूरी बनाए रखना आवश्यक हो, तब वह आपको बुद्धि दे। मसीह, जिसने अपने ही लहू के मूल्य के द्वारा आपको क्षमा किया, आपके स्वभाव को ऐसा गढ़े कि प्रतिशोध की अपेक्षा दया आपके लिए अधिक स्वाभाविक हो जाए। आपकी आज्ञाकारिता, चाहे वह किसी की दृष्टि में न आए, आपको उस राज्य के लिए तैयार करे जहाँ शत्रु फिर कभी नहीं होंगे और जहाँ शान्ति कभी भंग नहीं होगी। आगे का मार्ग सदैव सरल नहीं होगा। परन्तु उस मार्ग पर अनुग्रह आपके साथ चलेगा। और वही पर्याप्त है।



डॉ. रिचर्ड जॉन परहार्ड, कीव थियोलॉजिकल सेमिनरी में सन् 2003 से बाइबल और थियोलॉजी के प्रोफेसर (आचार्य) रहते हुए, वाइस प्रेसिडेंट (उपाध्यक्ष) और एकेडमिक डीन (शैक्षणिक अध्यक्ष) के तौर पर काम करते हैं। उन्होंने बैपटिस्ट बाइबल सेमिनरी से सिस्टमैटिक थियोलॉजी में पी.एच.डी. (मैग्रा कम लॉड) और डालस थियोलॉजिकल सेमिनरी से बाइबल की व्याख्या में मास्टर्स इन थियोलॉजी की डिग्री हासिल की है। वे “एंटीओसीन थियोरिया इन द राइटिंग्स ऑफ थियोडोर ऑफ मोपसुएस्टिया एण्ड थियोडोरेट ऑफ सायरस” (Antiochene Theōria in the Writings of Theodore of Mopsuestia and Theodoret of Cyrus) (फोर्ट्रेस प्रेस, 2015) पुस्तक के लेखक भी हैं।

डॉ. लैरी ओट्स, मारनाथा बैपटिस्ट सेमिनरी में लम्बे समय से बाइबल के प्रोफेसर (आचार्य) और पूर्व में सन् 2009-2019 तक अध्यक्ष रहे हैं। उन्होंने वाटरटाउन, विस्कॉन्सिन में मारनाथा बैपटिस्ट यूनिवर्सिटी में 40 से अधिक वर्षों तक सेवा की है। मारनाथा बैपटिस्ट यूनिवर्सिटी से ही स्नातक होने के बाद, उन्होंने सिस्टमैटिक थियोलॉजी में पी.एच.डी. की है और वे मौलिकतावाद और बैपटिस्ट इतिहास के विशेषज्ञ हैं।

